समाज विकासमाला

भर्तृहरि

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : ८६

भर्तृहरि

जीवन-परिचय तथा उपदेश

लेखक
जयकृष्ण चौधरी

संपादक
यशपाल जैन

१९५७
सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा महावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामन रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रखा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में किसी सुधार की गुंजाइश मालूम हो, तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

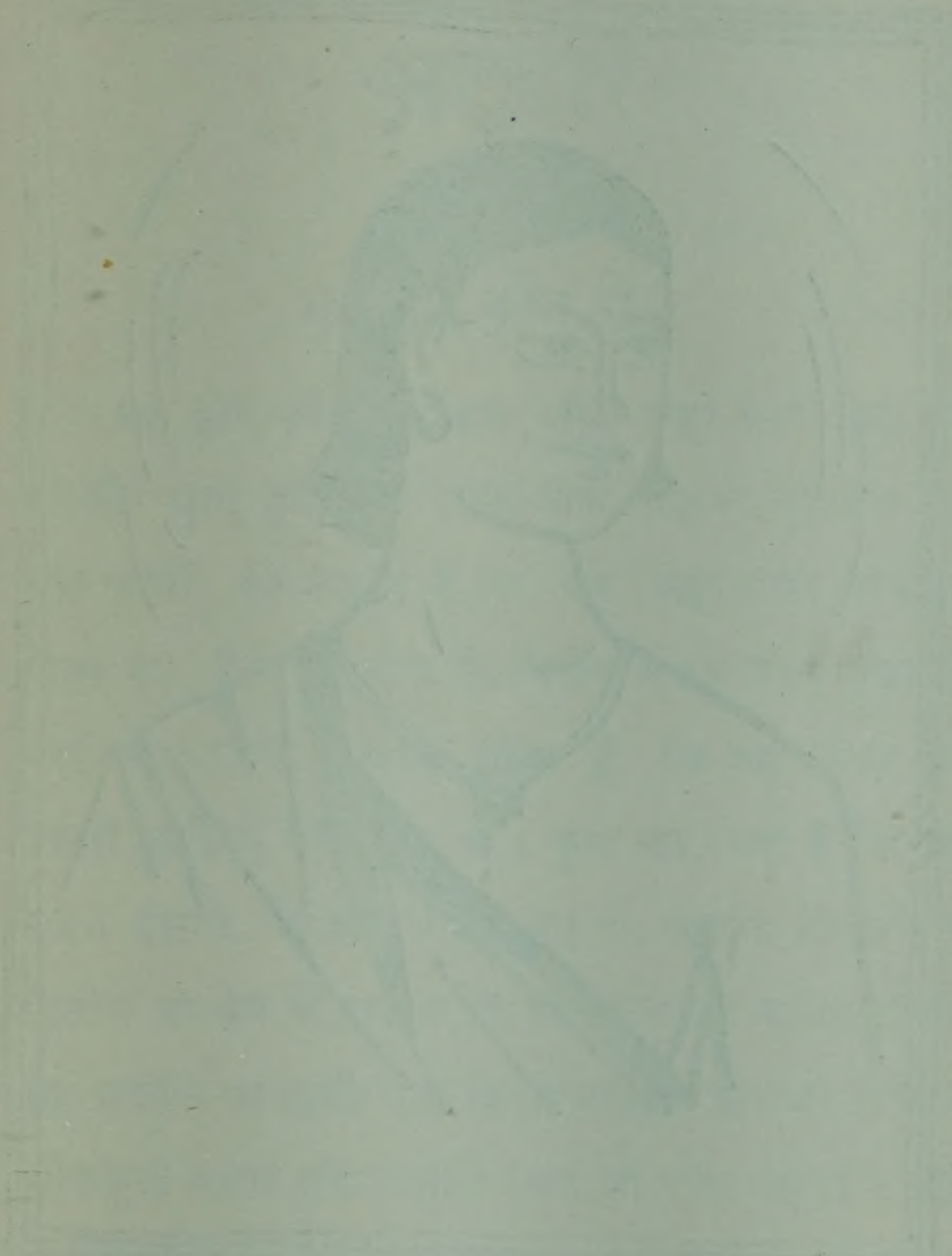
—मंत्री

पाठकों से

इस माला में हम कई महापुरुषों का जीवन-परिचय तथा उनकी वाणी दे चुके हैं। इस पुस्तक में भर्तृहरि का थोड़ा-सा परिचय और उनकी चुनी हुई वाणी दे रहे हैं। भर्तृहरि का नाम कौन नहीं जानता ? गांवों में भी लोग अपने 'भर्तृहरी' की कहानी तथा उनके उपदेश बड़े चाव से सुनते हैं।

हमें विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ेंगे और भर्तृहरि के उपदेशों पर गहराई से विचार करेंगे।

—संपादक





भर्तृहरि

भर्तृहरि

: १ :

भर्तृहरि कौन थे

भर्तृहरि कौन थे, कब और कहां पैदा हुए, कब उनकी मृत्यु हुई, यह ठीक-ठीक कहना मुश्किल है। कुछ लोगों का कहना है कि वह महाराजा विक्रमादित्य के, जिनके नाम से विक्रम संवत चालू हुआ है, भाई थे। इससे अंदाज़ होता है कि वह ईसा पूर्व पहली सदी में पैदा हुए थे। कुछ का मत है कि वह ६५० ईसवी के आस-पास हुए थे, जबकि शिलादित्य द्वितीय उज्जैन में राज करते थे। कुछ का मानना है कि वह उज्जैन या उसके पास किसी जगह के राजघराने के थे और कुछ समय तक उन्होंने स्वयं भी राज किया। बाद में राज-पाट छोड़कर वह घर से चल पड़े। पहले उज्जैन के पास किसी गुफ़ा में उन्होंने डेरा डाला, बाद में हरिद्वार और काशी में गंगा के किनारे रहने लगे।

भर्तृहरि ने अपने बारे में स्वयं विस्तार से कुछ नहीं लिखा, इसलिए उनके बारे में लोगों की अलग-अलग रायें हैं और यह कहना आसान नहीं है कि किसका मत सही है, किसका गलत। फिर भी, उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसीमें उनके जीवन की थोड़ी-बहुत झांकी मिल जाती है। फारसी के मशहूर शायर मख़्फ़ी ने एक जगह लिखा है—"मैं अपनी कविता के भीतर छिपा बैठा हूं, ठीक वैसे ही, जैसे फूल की पंखड़ियों के भीतर खुशबू, जो मुझसे मिलना चाहते हैं, वे मुझे मेरी कविता में देखें।"

जो हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि भर्तृहरि ऊंचे दर्जे के कवि थे। उन्होंने 'वाक्य प्रदीप' नाम की व्याकरण भी लिखी है, जिससे मालूम होता है कि वह कितने विद्वान थे। लेकिन जिन पुस्तकों ने उन्हें अमर बना दिया, वे हैं उनके तीन शतक—श्रृंगार-शतक, नीति-शतक और वैराग्य-शतक। पहले में उन्होंने जवानी और उसकी उमंगों का बड़ा ही मोहक चित्र दिया है। यह वह समय था, जबकि वह यौवन के झूले पर झूल रहे थे

और उन्हें जवानी के सपनों को छोड़ और कुछ दिखाई नहीं देता था। लेकिन यह हालत हमेशा नहीं रही। आखिर उनका नशा उतर गया और उनकी दृष्टि जगत और जीवन की असलियत की ओर गई। इस काल में उन्होंने जो लिखा, वह 'नीति-शतक' के नाम से मशहूर है। उसमें उन्होंने नीति-संबंधी बड़ी सुंदर बातें दी हैं, जो आदमी को ऊंचा उठानेवाली हैं। लेकिन हर कवि के जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। भर्तृहरि भी उससे बचे न रह सके। शृंगार के बाद वह जैसे नीति की ओर झुके, वैसे ही नीति के बाद वैराग्य की ओर उन्होंने मोड़ लिया। उस समय तक भर्तृहरि काफ़ी दुनिया देख चुके थे, उनका अनुभव बहुत बढ़ चुका था। इसलिए 'वैराग्य-शतक' में उनकी प्रतिभा बहुत ऊंची उठ गई है। अगर यह कहा जाय तो गलत न होगा कि उनकी यह आखिरी रचना उनके सारे साहित्य की जान है।

भर्तृहरि में वैराग्य उपजा, इसके पीछे एक बड़ी ही रोचक घटना बताई जाती है। कहते हैं, एक ब्राह्मण ने भगवान की बड़ी तपस्या की। उससे प्रसन्न होकर

भगवान ने उसे एक फल दिया और कहा कि इसे जो भी खायगा, वह हमेशा जीवित और जवान रहेगा। अमर-फल पाकर ब्राह्मण बहुत खुश हुआ। घर जाकर उसने उस फल को अपनी स्त्री को दिखाया और सारा हाल कह सुनाया। वे लोग बड़े गरीब थे। खाने के लाले पड़े रहते थे। इसलिए उसकी सब बातें सुनकर ब्राह्मणी खुश नहीं हुई। बोली—"स्वामी, भगवान ने अच्छा किया जो तुम्हें यह फल दिया, लेकिन इससे हमें क्या सहारा मिलेगा? अगर वह धन देते तो हमारा ज्यादा भला होता—आप ही बताइये, आजकल धन के बिना सुख कहां, धन के बिना इज्जत कहां! आप तो देखते ही हैं कि हमें गरीब देखकर हमारे नाते-रिश्तेदार किस तरह निगाह चुराते हैं? इससे तो अधिक अच्छा होगा कि यह अमर-फल अपने राजा को दे दिया जाय। इससे दोनों फायदे होंगे—एक तो इनाम मिलेगा, दूसरे ऐसे धर्मात्मा-पुण्यात्मा राजा के सदा जीवित रहने से प्रजा का भी फायदा होगा।"

ब्राह्मण-ब्राह्मणी ने आपस में काफी बहस की, दूर-

पास की सोची। अंत में ब्राह्मण उस फल को राजा भर्तृहरि के पास ले गया और उन्हें भेंट कर आया। राजा ने प्रसन्न होकर उसे कई लाख अशर्फियां इनाम में दीं, ब्राह्मण उन्हें लेकर घर चला आया।

राजा भर्तृहरि अपनी रानी पिंगला को बहुत प्यार करते थे। उसकी किसी बात को टालना भर्तृहरि के लिए संभव न था। पिंगला के कहने से ही कुछ समय पहले उन्होंने अपने छोटे भाई विक्रम को देश-निकाला दे दिया था। विक्रम पर पिंगला की इस नाराजगी का कारण यह था कि उसे पिंगला की दुश्चरित्रता का पता लग चुका था जिसके कारण वह उसे अपने रास्ते से दूर करना चाहती थी। भर्तृहरि को अपने भाई से स्नेह तो था, पर वह पिंगला के इतने वश में थे कि न वह उसपर संदेह कर सकते थे, न उसका कहना टाल सकते थे। अतः उन्होंने विक्रम को देश से निकाल दिया। अमर-फल मिलने पर उन्होंने सोचा कि उस फल को स्वयं न खाकर अपनी रानी को दे दें, जिससे वह सदा जवान और रूपवती बनी रहे। सो उन्होंने वह फल रानी को जाकर दे दिया।

लेकिन संयोग की बात कि रानी का झुकाव एक दारोगा की तरफ़ था। उसके प्रेम के बस होकर उसने वह फल उसको दे दिया। दारोगा एक वेश्या को चाहता था। उसने वह फल उसे दे दिया। वेश्या अपने पाप के जीवन से तंग आ गई थी और पाप का बोझा अधिक ढोना नहीं चाहती थी। उसने सोचा कि अमर-फल तो किसी ऐसे व्यक्ति को दिया जाना चाहिए जिसके जीने से सबका लाभ हो। ऐसा व्यक्ति उसकी निगाह में एक ही था—राजा भर्तृहरि। अतः उसने जाकर उस फल को राजा को भेंट कर दिया। इस प्रकार वह फल होते-होते फिर राजा के पास पहुंच गया।

राजा ने उस फल को देखा तो दंग रह गये। उन्हें हैरानी हुई कि जो फल उन्होंने रानी को दिया था, वह वेश्या के पास कैसे पहुंच गया? आखिर जब सारा भेद खुला तो राजा की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। वह सोचने लगे कि सच्चा प्रेम क्या है? क्या वह निरा धोखा ही है? क्या वह मृग-मरीचिका है, जो आदमी को अपने पीछे दौड़ा-दौड़ाकर उसके प्राण ले लेती है? उन्हें

लगने लगा कि यह दुनिया बाहर जितनी मनोहर लगती है, भीतर से उतनी ही घिनोनी और भयानक है ।

उन्हें संसार और विषय-भोगों से घृणा हो गई । उन्होंने समझ लिया कि संसार में कोई किसीका नहीं है । सब मिथ्या जाल है । इसमें फंसकर लोग अपना मूल्यवान जीवन वृथा गंवाते हैं । उन्हें साफ दिखाई देने लगा कि विषयों के भोगने में रोगों का डर है, कुल में दोष होने का डर है, धन में हानि का डर है, चुप रहने में दीनता का डर है, बल में शत्रुओं का डर है, सौंदर्य में बुढ़ापे का डर है, गुणों में दुष्टों का डर है, शरीर में मौत का डर है, संसार में सभी चीजों में आदमी को भय है--केवल वैराग्य में किसी प्रकार का भय नहीं है ।

वह भगवान से प्रार्थना करने लगे—"हे परमात्मन, मेरे जीवन के शेष दिन किसी पवित्र वन में 'शिव-शिव' रटते हुए बीतें । सर्प और फूल-माला, बलवान और दुर्बल, शत्रु और मित्र, कोमल फूलों की शैया और पत्थर की शिला, मणि और कंकड़ तथा तिनके और

सुंदर स्त्रियों के समूह—सब—में मेरी दृष्टि एक-सी हो जायं, यही मेरी इच्छा है।

भर्तृहरि की जीवन-नदी में जो, इकसार धरती पर धीरे-धीरे बह रही थी, इस तरह बाढ़ आगई और एक नया ही रास्ता खुल गया। उन्होंने दुनिया से नाता तोड़ दिया—उस दुनिया से, जो आदमियों की आंखों पर पट्टी बांधे रहती है, जिससे अज्ञान का अंधेरा छाया रहता है, विवेक के दीपक बुझे रहते हैं; जहां जिंदगी लड़ाई से हमेशा कांपती रहती है और जहां आत्मा प्यार और नफरत के बोझ के नीचे दबी रहती है।

उन्होंने राजपाट, धन-दौलत सब त्याग दिये। चलते समय उन्होंने अपने मंत्री को बुलाया और कहा—"हे मंत्रिवर, मैंने अपने धर्मात्मा और सत्यवादी भाई विक्रम के साथ बड़ा अन्याय किया। उस समय मेरी बुद्धि पर पत्थर पड़े हुए थे, इसलिए सच्ची बात जाने बिना मैंने उसे देश-निकाला दे दिया। मंत्रीजी, अब आप उसका पता लगायें और अगर वह मिल जाय, तो उसे राजगद्दी पर बिठा दें।"

पिंगला के विश्वासघात का पता चलने के बाद यदि भर्तृहरि चाहते तो पिंगला को जीती धरती में गढ़वा देते, दारोगा को तोप से उड़वा देते और स्वयं चैन से रहते, लेकिन वह तो फिर दुनिया से चिपकना होता। भर्तृहरि उस अवस्था से ऊपर उठ चुके थे, दुनिया की किसी भी चीज़ में उनको रस न रहा था। इसलिए उन्होंने दूसरा रास्ता ही चुना और सब-कुछ त्याग दिया।

घर के छोड़ने के बाद भर्तृहरि ने कुछ दिन जंगल में बिताये, फिर गंगाजी के किनारे। उनके थके और परेशान दिमाग को गंगा के शीतल जल ने शांति दी, उनकी थकान मिटा डाली। गंगा के किनारे की गीली रेती में लेटकर जब वह रात को जल की लहरों पर चांद को अठखेलियां करते देखते, तो उनका मन झूम उठता। गंगा-मैया का किनारा, हरे-भरे पेड़, एकांत और शांति। इस नई दुनिया में अब उन्हें किस चीज की कमी थी ? रेत का फर्श उनका बिछौना था, पत्थर या हाथ सिरहाना था, पेड़ों की छाल और

पत्ते उनकी पोशाक थी। हाथ प्याले थे। उनका यह नया घर बहुत ही बड़ा था। चारों दिशाएं उसकी चार दीवारें थीं। नीला आसमान उसकी छत था और चंद्रमा दीपक था। यह जिंदगी उस जिंदगी से हजार गुना अच्छी थी, जिसमें एक आदमी दूसरे की तरफ मतलब की निगाह से देखता है, जहां जिंदगी की जरूरतों को पूरा करने के लिए धोखे का सहारा लेना पड़ता है और जहां पर आत्म-सम्मान की हत्या करने की लाचारी आदमी के सामने रहती है।

भर्तृहरि की सिकुड़ी आत्मा शांति का स्थान पाकर फैल गई। प्रेम और सहानुभूति का सोता उमड़ पड़ा। मेरे-तेरे का भेद मिट गया। सब उनके लिए एक हो गये। चारों ओर उन्हें मस्ती-ही-मस्ती दिखाई देती। सब उनके अपने हो गये—जंगल में बूढ़े हिरन आते और उन्हें चट्टान समझकर उनके शरीर से रगड़ अपने शरीर की खुजलाहट मिटाते। हिरनों के बच्चे उनके सामने उछल-कूद करते। भर्तृहरि का मन आनंद से झूम उठता, आंखें प्रसन्नता से चमक उठतीं। वह गा उठते—वाह !

यह जीवन कितना आनंद और मस्ती से भरा हुआ है !

सचमुच उन्होंने असली आनंद को जान लिया था। उनका नाता दुनिया से टूट चुका था और प्रकृति से जुड़ गया था। ऐसा लगता था, मानो बूंद समुद्र में मिल गई हो।

लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि दुनिया से विमुख होकर भी दुनिया के लिए उनके मन में घृणा के भाव पैदा नहीं हुए थे। जैसे कोई आदमी सोते से उठकर नई चीजें देखता हो, वही हाल भर्तृहरि का हुआ। उनकी आंखों में थी अब नई ज्योति, मन में नई उमंग और दिलमें नये आनंद की तरंग।

अगले पृष्ठों पर उनकी कुछ रचनाओं के चुने हुए अंश दिये जाते हैं।

: २ :

भर्तृहरि के उपदेश

(१)

कान की शोभा कुंडलों से नहीं, पर सद्बोध के सुनने से है, हाथ की शोभा कंगन से नहीं, पर सत्पात्र को दान देने से है, इसी प्रकार करुणाशील मनुष्य की काया चंदन आदि खुशबूदार चीजों के लेप से नहीं, परंतु परोपकार के कामों से शोभित होती है।

(२)

जिस आदमी के पास क्षमा हो, उसे अपनी रक्षा के लिए जिरह-बख्तर की क्या जरूरत है ? उसके अंदर अगर गुस्सा हो, तो फिर दुश्मनों की क्या जरूरत ? भाई-बंधु कटुता रखनेवाले हों, तो आग की क्या जरूरत ? अगर स्नेह करनेवाले मित्र हों, तो गुणकारी दवा की क्या जरूरत ? अगर दुर्जन आस-पास हों तो सांपों की क्या जरूरत ? और अगर संस्कारवाली विद्या प्राप्त की

हो, तो धन की क्या जरूरत? अगर लाज-लज्जा हो, तो आभूषणों की क्या आवश्यकता? और अगर सुंदर काव्य-रचना की शक्ति हो, तो उसके आगे अधिकार की क्या हस्ती?

(३)

अगर मनुष्य के अंदर लोभ है, तो फिर उसे और दूसरा ऐब क्या चाहिए? चुगली खाने की लत हो, तो दूसरे पापों की क्या जरूरत? अगर सचाई है, तो दूसरे तप की क्या आवश्यकता? मन निर्मल हो, तो तीर्थ-यात्रा की क्या जरूरत? भलमनसी हो, तो दूसरे सगे-संबंधियों की क्या आवश्यकता? जिसकी समाज में स्वाभाविक प्रतिष्ठा है, उसे आभूषणों की क्या जरूरत? जिसके पास सद्विद्या है, उसे पैसे की क्या कमी? और जिसकी अपकीर्ति फैल गई हो, उसके लिए मौत की क्या दरकार?

(४)

अरे भाई! तृष्णा को मन से निकाल दो, क्षमा को धारण कर लो। गर्व को छोड़ दो। पाप-कर्म में

लगाव मत रखो। सत्य ही बोलो। भले आदमियों के बताये रास्ते पर चलो, विद्वानों की सेवा करो, साधारण लोगों का मान करो। जो तुम्हारा द्वेष करें, उनका भी मन रखो, अपने गुणों का बखान मत करो। जो कीर्ति मिली है उसे सहेजकर रखो। दीन-दुखियों पर दया किया करो। सब सज्जन लोग आगे ऐसा ही आचरण करते आये हैं।

(५)

गरम लोहे पर पानी की जो बूंद गिरती है, भाप बनकर उड़ जाती है। वही बूंद कमल के पत्ते पर मोती के दाने जैसी शोभा देती है। पर स्वाति नक्षत्र में वही बूंद जब सीप में गिरती है, तो सुंदर मोती बन जाती है। सचमुच अधम, मध्यम और उत्तम गुण जैसी सोहबत होती है उसीके अनुसार मिलते हैं।

(६)

एक पुरानी कथा सुनो। पानी दूध के पास गया। दूध ने अपने अतिथि की सेवा में अपने सारे गुण पानी को अर्पण कर दिये। दूध को पतला हुआ जानकर लोगों

नें ग्राग पर गरम करने चढ़ा दिया। पर दूध को इस प्रकार तपते हुए देखकर पानी ने पहले अपने को आग में जला दिया। लेकिन अपने कारण अपने मित्र पानी को जलता देखकर दूध ने खुद आग पर हमला करने का विचार किया। अंत में दूध से उसके पुराने मित्र पानी का संयोग हुआ, तभी वह शांत हुआ। सच है, भले आदमियों की दोस्ती इसी तरह की होती है।

(७)

सुबह की छाया शुरू में बड़ी लंबी होती है, पर जैसे-जैसे दिन चढ़ता जाता है, वह छोटी होती जाती है और वह अपने नीचे समा जाती है। दुर्जनों की मित्रता भी इसी तरह की होती है। पर इसके विपरीत सज्जनों की दोस्ती का हाल दोपहर की छाया के समान होता है। वह पहले छोटी होती है, पर धीरे-धीरे, जैसे-जैसे सांझ होती जाती है, वह लंबी होती जाती है। इस प्रकार सज्जन और दुर्जन की मित्रता में शाम-सुबह की छाया के समान भेद होता है।

(८)

विपत्ति के समय धीरज, अपनी बढ़ती के समय क्षमा-शीलता, सभा में वाणी की चतुरता, युद्ध में पराक्रम, सुकीर्ति से प्रेम, अच्छी पुस्तकों का अध्ययन, ये सब महान लोगों की स्वाभाविक विशेषताएं होती हैं।

(९)

सूरज बिना इस बात की राह देखे कि कोई आकर उससे कहे, कमल वन को खिलाता है। इसी प्रकार चंद्रमा भी कामिनी को खिलाता है। मेघ भी बिना विनती कराये दुनिया पर जल-वृष्टि करता है। सच-मुच सज्जन लोग परोपकार के लिए अपने-आप ही उत्साहपूर्वक प्रयत्न किया करते हैं।

(१०)

समझदार आदमी को चाहिए कि भला या बुरा काम करने से पहले यत्नपूर्वक यह विचार कर ले कि इस कार्य का परिणाम क्या आयगा, क्योंकि जल्दी में बिना विचारे किये हुए काम का परिणाम तीखे बाण के समान मृत्यु-पर्यंत हृदय में टीस मारता रहेगा।

(११)

सज्जनों का समागम बुद्धि की जड़ता को दूर करता है। वाणी में सत्य का सिंचन करता है। प्रतिष्ठा और उन्नति का रास्ता बताता है। पाप को मिटाता है। चित्त को निर्मलता की प्रसन्नता देता है और दसों दिशाओं में कीर्ति फैलाता है। सत्संग मनुष्य के लिए क्या नहीं करता ?

(१२)

वैभव की शोभा सौजन्य है, वीरता की शोभा वाणी पर काबू पाना है, ज्ञान की शोभा वैराग्य और चित्त की शांति है, विद्या की शोभा विनय से है, धन की शोभा दान से है, तप की शोभा अक्रोध है, अधिकार की शोभा क्षमा है, धर्माचरण की शोभा निर्मलता है, पर इन सबके मूल में सबको शोभा देनेवाली चीज तो शील-चारित्र्य है।

(१३)

अरे मन, तू जरा देर में पाताल में पहुंच जाता है और जरा देर में आकाश से भी परे पहुंच जाता है। दूसरे

ही क्षण दसों दिशाओं में घूम जाता है। पर अपनी आत्मा के कल्याण के लिए और उसे शांति मिले, इसके लिए भगवान का स्मरण भूल-चूक से भी क्यों नहीं करता ?

(१४)

सेवा का धर्म बड़े-बड़े योगियों के लिए भी बड़ा कठनि और गहन है, क्योंकि अगर सेवक ज्यादा बोलने-वाला न हुआ, तो गूंगा कहा जाता है, वही अगर बोलने में कुशलता बताता है, तो उसे खुशामदी या वाचाल कह दिया जाता है। अगर वह स्वामी के सामने खड़ा रहता है, तो ढीठ माना जाता है और दूर रहकर सेवा करता करता है, तो गंवार मान लिया जाता है। अगर वह सहनशील है, तो डरपोक में उसकी गिनती होती है, और अगर उसने कोई बात सहन नहीं की, तो खानदानी न होने का दोष उस पर लगाया जाता है।

(१५)

न्याय और सदाचारपूर्वक आजीविका चलाने का आग्रह रखना, प्राण जाने का समय आने पर भी अपने हाथों हल्का और गंदा काम न होने देना, दुर्जन लोगों

से याचना तो नहीं ही करनी, पर मित्रों से भी अगर वे निर्धन हों, तो कुछ भी न मांगना, विपत्ति आने पर दीन न बनकर सिर ऊंचा रखना और आपत् धर्म की बात न करके ऊंचे आदर्श का व्यवहार करना, यानी संकट के समय धीर और उदात्त आचरण रखना और महापुरुषों के बताये मार्ग पर चलना, ऐसा यह तलवार की धार पर चलने-जैसा रास्ता सज्जनों को किसने बताया होगा ?

किसीने नहीं, यह तो उनका स्वभाव है।

(१६)

बिना किसी तरह का विज्ञापन किये चुपचाप दान करना, अतिथि के घर आने पर आनंद से उसकी आवभगत करना, दूसरे का भला करके चुप रहना, किसीने हमारा उपकार किया हो, तो सबके सामने उसको स्वीकार करना, संपत्ति में गर्व न करना, जिसमें दूसरे की निंदा और अपमान होता हो, ऐसी बातें न करना, इस प्रकार का कठिन और तलवार की धार पर चलने-जैसा कठिन मार्ग सज्जनों को भला किसने बताया होगा ?

किसीने नहीं, क्योंकि यह तो उनका स्वभाव ही है।

(१७)

अपना स्वार्थ छोड़कर दूसरों का हित-साधन जो लोग करते हैं, वे सत्पुरुष कहे जाते हैं। अपने स्वार्थ को आंच न आने पावे, इसका विचार करते हुए जो दूसरों का हित-साधन करते हैं, वे साधारण कोटि के मनुष्य कहे जाते हैं। जो अपने स्वार्थ की खातिर दूसरों के हितों को नुकसान पहुंचाते हैं, वे मनुष्य के रूप में राक्षस कहे जा सकते हैं। पर जो बिना मतलब के दूसरों के हित का नाश करने लग जाते हैं, ऐसे लोगों को क्या कहा जाय ?

(१८)

जिस मनुष्य के पास न तो विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है, न गुण है और न धर्म का पालन है, वह इस धरती पर सचमुच ही भार-भूत है और मनुष्य के रूप में पशु के समान है।

(१९)

दान, उपभोग और नाश इस प्रकार धन की तीन गति होती हैं। जो आदमी न तो दान देता है और न

उसका उपभोग करता है, उसका धन नष्ट ही होता है।

(२०)

हल्की कोटि के मनुष्य विघ्नों के भय के कारण काम की शुरुआत ही नहीं करते, बीच की कोटि के लोग काम शुरू तो करते हैं, पर विघ्न आते ही बैठ जाते हैं। परंतु श्रेष्ठ पुरुष विघ्नों से बार-बार पीड़ित होने पर भी हाथ में लिया हुआ काम पूरा किये बगैर छोड़ते ही नहीं।

(२१)

नीतिमान लोगों में जो निपुण लोग हैं, वे भले ही तारीफ़ करें या निंदा करें, भाग्य लक्ष्मी आये या चली जाय, मौत आज आ जाय या युग बीत जाने पर आये, पर विचारवान और धीर पुरुष न्याय के रास्ते से एक कदम भी विचलित नहीं होते।

(२२)

फलों के भार से पेड़ नीचे नमते हैं, बादल पानी के भार से नीचे झुकते हैं, वैभव के समय सत्पुरुष भी उद्धत बनने के बजाय नम्र बनते हैं—परोपकारी मनुष्यों

का स्वभाव ही ऐसा होता है।

(२३)

हे धरती माता, तात वायु, मित्र तेज, हे बंधु जल और भाई आकाश, तुम सबों को मैं हाथ जोड़कर अपने अंतिम नमस्कार करता हूं। तुम सबों की सत्संगति से मेरे अच्छे कर्मों का उदय हुआ, उसके द्वारा जो निर्मल ज्ञान मिला उससे मोह का पर्दा हट गया और मैं अब भगवान में सदा के लिए लीन हो रहा हूं। अब इस जगत में फिर से आना या यहां से फिर जाना नहीं रह जायगा।

(२४)

करीर में पत्ते नहीं लगते तो इसमें बसंत का क्या दोष ? उल्लू दिन में नहीं देख सकता तो इसमें सूरज का क्या दोष ? जल की धारा चातक के मुख में नहीं जाती तो इसमें मेघ का क्या दोष ? विधाता ने जो भाग्य में लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है ?

(२५)

लाभ क्या है ? गुणियों की संगत। दुःख क्या

है ? मूर्खों का साथ। हानि क्या है ? समय पर चूकना। निपुणता क्या है ? धर्म की बातों में प्रेम। शूर कौन है ? वह, जिसने इंद्रियों को अपने वश में कर रखा है। उत्तम स्त्री कौन-सी है ? जो अपने अनुकूल हो। धन क्या है ? विद्या। सुख क्या है ? पराधीन न होना। और राज क्या है ? अपनी इच्छानुसार जीवन बिताना।

(२६)

एक सांप एक पिटारे में बंद हो गया। वहां वह भूख से व्याकुल होकर जीवन से भी निराश हो गया। इसी बीच एक चूहा भोजन की तलाश में पिटारे के पास पहुंचा और उस पिटारी में छेद करके घुस गया; लेकिन वह वहां सांप का भोजन ही नहीं बना, सांप की मुक्ति का कारण भी बना। सच है दैव ही किसीके नाश और किसीकी बढ़ोतरी का कारण होता है।

(२७)

एक गंजे आदमी का सिर धूप में जलने लगा। भागकर वह एक नारियल के पेड़ के नीचे छांह में चला गया। लेकिन हवा चली और एक नारियल

उसके सिर पर आ गिरा। इससे उसका सिर फूट गया। अभागा आदमी जहां जाता है, विपत्ति पीछे-पीछे उसके साथ ही चलती है।

(२८)

हे चातक, मेरी बात जरा ध्यान से सुनो। आकाश में बादल बहुत से होते हैं, परंतु सभी ऐसे नहीं होते जो तुझे तृप्त कर सकें। बहुत से तो ऐसे होते हैं जो व्यर्थ ही गरजकर चले जाते हैं। इस कारण हर किसी बादल को देखकर उसके आगे दीन वचन मत बोला करो। मतलब यह कि हर किसीके आगे अपना दुखड़ा रोने नहीं लग जाना चाहिए, क्योंकि सभी लोग तुम्हारा दुख दूर करने में समर्थ नहीं होते।

(२९)

कुत्ता लहू और चर्बी से सना हड्डी का गंदा-सा टुकड़ा पाकर खुश हो जाता है, परंतु शेर अपने पास आये हुए सियार को छोड़कर हाथी को मारने दौड़ पड़ता है। इस उदाहरण से यही पता चलता है कि सभी लोग अपने पुरुषार्थ के अनुरूप ही फल को प्राप्त करते हैं।

(३०)

इस बदलती हुई दुनिया में कौन तो पैदा नहीं होता और कौन मरता नहीं ? परंतु असल में जन्म होना उसीका सार्थक कहा जाता है, जो अपनी जाति या वंश की भलाई करता है।

(३१)

सदाचारी पुत्र, अपने अनुकूल आचार-विचारवाली स्त्री, कृपा करनेवाला स्वामी, प्रेमी मित्र, धोखा न देने-वाले परिजन, क्लेश-रहित मन, सुंदर रूप, हमेशा टिकनेवाला वैभव और विद्या के प्रभाव से शोभा देने-वाला चेहरा आदि ये सब उन्हीं लोगों को प्राप्त होते हैं, जिन पर भगवान प्रसन्न हो जाते हैं।

(३२)

प्राणियों की हिंसा से बचना, दूसरे के धन को हरण करने से डरना, सच बोलना, समय के अनुसार अपनी ताकत के मुताबिक दान देना, दूसरों की स्त्रियों के बारे में कोई चर्चा आदि न करना, तृष्णा के प्रभाव में न रहना, बड़े लोगों से नम्रता का व्यवहार करना,

रोजमर्रा के कामों को जारी रखना, ये सब काम मनुष्यों के कल्याण के मार्ग हैं।

(३३)

विद्या से ही मनुष्य की शोभा है। विद्या छिपा हुआ धन है। विद्या ही भोग, यश और सुख देनेवाली है। विद्या सब गुरुओं की गुरु है। परदेश में विद्या ही भाई-बंधु है। मतलब यह कि विद्या ही सबसे बड़ा देवता है। इसी कारण राजा आदि बड़े लोग विद्या की पूजा करते हैं। इसीलिए कहा है कि जो विद्या से हीन हैं वे पशु के समान हैं।

(३४)

जो बुराई करने से रोके, अच्छे कामों की तरफ मोड़े, किसी गुप्त बात को जो न प्रकट करे, खूबियों का बखान करे, विपत्ति के समय जो साथ न छोड़े, मौका पड़ने पर जो साथ दे, संत लोग कहते हैं कि सच्चे मित्रों के यही लक्षण होते हैं।

समाज विकास - माला की पुस्तकें

१. बदरीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. निषाद और शबरी
११. गांव सुखी, हम सुखी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तंदुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी - मानस - मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७. राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिल-जुलकर काम करो
५७. कालापानी
५८. पावभर आटा
५९. सवेरे की रोशनी
६०. भगवान के प्यारे
६१. हारूं-अल-रशीद
६२. तीर्थंकर महावीर
६३. हमारे पड़ोसी
६४. आकाश की बातें
६५. सच्चा तीरथ
६६. हाजिर जवाबी
६७. सिंहासन-बत्तीसी भाग १
६८. सिंहासन-बत्तीसी भाग २
६९. नेहरूजी का विद्यार्थी - जीवन
७०. मूरखराज
७१. नाना फडनवीस
७२. गुरु नानक

मूल्य प्रत्येक का छः आना

छः आना